आहार और आरोग्य

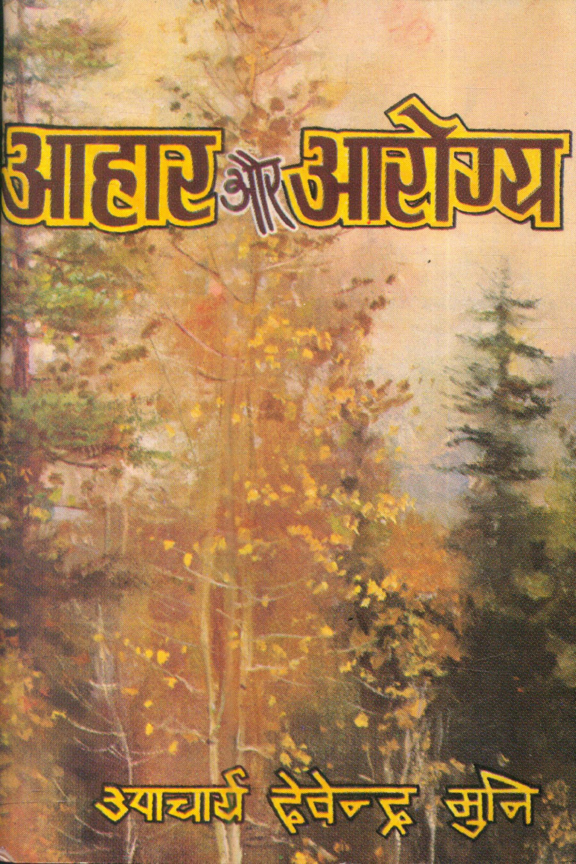

उपाचार्य देवेन्द्र मुनि

श्री नमस्कार महामंत्र

नमो अरिहंताणं,

नमो सिध्दाणं,

नमो आयरियाणं,

नमो उवज्झायाणं,

नमो लोए सव्व साहूणं

एसो पंचनमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम्॥

आहार और आरोग्य

उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल,
उदयपुर—३१३ ००१.

❈ *अर्थ सौजन्य :*
गुरुभक्त उदार चेता साधक
श्री धनराजजी चुन्नी लाल जी बांठिया
बांठिया इंटर प्राइजेज
८९, भवानी पेठ, पुना-४११०४२

❈ *मुद्रण :*
संजय सुराना के लिए
कामधेनु प्रिंटर्स एन्ड पब्लिसर्स
अवागढ़ हाउस, आगरा—२८२ ००२.

❈ *प्रथम बार*
वि. सं. २०४७ चैत्र : महावीर जयन्ती
ईस्वी सन् १९९० अप्रैल

❈ *लागत मूल्य :*
दो रुपया पचास पैसे

प्राथमिक

अन्नं वै प्राणा :– अन्न को प्राण माना गया है । अन्न का प्रभाव शरीर पर तो पड़ता ही है, मन पर भी पड़ता है । यह बात प्रत्यक्ष अनुभव की है ।

जिस प्रकार सड़ा, गला, दूषित भोजन स्वस्थ प्राणी को तुरंत रोगी और अशक्त बना देता है, उसी प्रकार तामसिक, उत्तेजक और मादक पदार्थ मनुष्य के मन मस्तिष्क को अतिशीघ्र विकृत तथा विचारों को मलिन तथा हीनताग्रस्त बना देता है ।

आहार के विषय में प्राचीन समय से ही बहुत गंभीर चिन्तन चलता रहा है । विशेषकर जैन विचारकों ने तो इस विषय पर बहुत ही सूक्ष्मता से चिन्तन कर आहार विषयक अनेक नियम, मर्यादाएं तथा सूचनाएं दी हैं जिनका उचित पालन करने

से मनुष्य सदा स्वस्थ, नीरोग, और सदाचारी रह सकता है ।

आज की वैज्ञानिक खोजों ने आहार का सीधा प्रभाव आरोग्य पर मानते हुए यह सिद्ध किया है कि मांस, अंडे, मद्य का सेवन तथा अधिक मात्रा में घी, दूध, तेल, चाय, मिर्च-मसाला आदि का अविवेक युक्त उपयोग मनुष्य को अनेक रोगों का शिकार बनाकर जीवन जीने के लिए असमर्थ-अपाहिज तक बना देता है ।

आज जैसे-जैसे मांस, अंडे, मद्यं आदि का सेवन बढ़ता जा रहा है, वैसे-वैसे अनेक प्राणघातक बीमारियों से ग्रस्त होता मनुष्य अकाल में ही मृत्यु के मुंह में जा रहा है । यह जानते हुए भी कि ये सब पदार्थ उसके लिए न केवल जहर हैं, बल्कि उसकी मानवीय चेतना के लिए भी घातक हैं, वह स्वाद या फैशन, अज्ञान या देखादेखी वश इनका उपयोग करता हुआ आत्मघात की ओर बढ़ रहा है ।

मैंने बहुत बार इस विषय पर लिखा है और समाज के सभी वर्ग को सावधान किया है कि स्वाद के चक्कर में बर्बाद होने से बचें । जीभ के वश होकर जीवनं से खिलवाड़ न करें । आरोग्य चाहते हैं, दीर्घ जीवन चाहते हैं, स्वस्थ रहना चाहते हैं तो आहार का विवेक सीखें । गीता के अनुसार–

युक्ताहार विहारस्य योगो भवति दुःखहा ।

जिसका आहार-विहार संयत है, वह दुःख व कष्टों से दूर रह सकता है ।

"आहार और आरोग्य" नामक यहलघु पुस्तक पाठकों की मार्गदर्शिका बनेगी और स्वस्थ एवं आदर्श जीवन, जीने की सूचनाएं देगी तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा ।

– उपाचार्य देवेन्द्रमुनि

आहार और आरोग्य

आहार शरीर की मूल आवश्यकता है। षट् पर्याप्तियों में सर्वप्रथम आहारपर्याप्ति है। जीव एक स्थान से दूसरे स्थान पर जब पैदा होता है तब वह सर्वप्रथम आहार ग्रहण करता है। अनाहारक स्थिति तो संसारस्थ प्राणियों की तीन समय से अधिक नहीं है। वह भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर उत्पन्न होते समय या केवली समुद्घात के समय होती है। शेष समय वह आहार करता है।

शरीर का पहला रोग है—भूख, और इस भूख को मिटाने के लिए आहार अनिवार्य है। आहार से शरीर में ओज, तेज, उत्साह और जीवनी शक्ति की वृद्धि होती है, किन्तु यह ध्यान रखना है कि जो आहार मनुष्य की जीवनी शक्ति बढ़ाने वाला है, उसको स्वस्थ, बलवान और दीर्घजीवी रखने वाला

है, वही आहार यदि अज्ञान और अविवेकपूर्वक लिया जाये तो शरीर के लिए घातक, रोगवर्धक और प्राणशक्ति को क्षीण करने वाला भी हो जाता है ।शरीरशास्त्रियों के आंकड़े इस बात के साक्ष्य हैं कि संसार में जितने मनुष्य भूख से छटपटाते हुए मरते हैं उनसे ज्यादा मनुष्य अधिक खाकर मरते हैं । अनेक व्यक्ति रोग से मरते हैं और रोग होने का मुख्य कारण क्या है ? भूख नहीं, गलत खान-पान है । अमर्यादित, अविवेक-पूर्ण दुष्पाच्य और ऐसा भोजन जो मानव शरीर की प्रकृति के प्रतिकूल हो, जिसकी शरीर को आवश्यकता नहीं हो ।

भोजन के तीन उद्देश्य हैं—

- भूख मिटाने के लिए—खाना
- शरीर को स्वस्थ और क्रियाशील रखने के लिए—खाना
- केवल स्वाद के लिए—खाना

सिर्फ भूख मिटाने के लिए ही खाना, यह तो पशुवृत्ति है, इसे खाना नहीं कहकर

चरना कह देवें तो भी चलेगा । क्योंकि जिस भोजन के लिए कोई उद्देश्य नहीं, भोजन सामग्री के विषय में किसी प्रकार का विवेक नहीं, न स्वास्थ्य का ध्यान है, न ही धर्म, कर्म का, ऐसा भोज्य अत्यन्त तामसिक व पाशविक भोजन है ।

शरीर को स्वस्थ, मन को फुर्तीला, क्रियाशील और नीरोग रखने की दृष्टि से भोजन करना—मानवीय भोजन है, यह विवेकपूर्ण है तथा मानव सभ्यता तथा स्वास्थ्य के अनुकूल भी है ।

तीसरी श्रेणी है स्वाद के लिए—खाना । यह प्रवृत्ति अधिकतर मनुष्य में ही पाई जाती है । पशु प्रायः उतना ही खाता है जितने से उसका पेट भर जाये । पेट भरने के पश्चात् उसके सामने चाहे जैसी बढ़िया भोजन-सामग्री डाल दें तो वह सूंघकर छोड़ देगा पर खायेगा नहीं । छोटे शिशुओं में भी यह प्रवृत्ति देखी जाती है, वे तब तक खाते हैं जब तक पेट में भूख होती है, पेट भरने

के बाद चाहे जैसी स्वादिष्ट वस्तु उन्हें दे दो, प्रायः वे खाते नहीं हैं । यह उनका प्राकृतिक विवेक समझ लें या कुदरत का नियम समझ लें; किन्तु समझदार मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो प्राकृतिक भोजन को भी स्वादिष्ट संस्कारित बनाकर खाना चाहता है और स्वाद के वश में वह भूख से भी ज्यादा खा जाता है । अधिक मात्रा में खाया हुआ भोजन जहर है । अमृत भी विष बन जाता है ।

कहावत है—स्वाद करे बर्बाद । स्वाद के लिए खाया हुआ आहार न स्वास्थ्यप्रद होता है, न मन को प्रसन्नता प्रदान करता है । कुछ क्षणों का जीभ का स्वाद बाद में अनेक प्रकार की तकलीफें पैदा करता है ।

मनुष्य असहज (एब्नोर्मल) हो जाता है, वह न तो ठीक से काम कर पाता है, न ही आराम । अत्यधिक मिर्च-मसाला वाला, गरिष्ठ भोजन, तामसिक आहार, शरीर व मन को सुखप्रद नहीं होता, वह सिर्फ कुछ

क्षण तक जीभ को ही सन्तुष्ट कर सकता है, मन को नहीं । अतः भोजन के लिए अत्यधिक विवेक व समझदारी की आवश्यकता है ।

यह सत्य है कि भोजन हमारे शरीर के लिए अनिवार्य है । इतने आवश्यक तथा अनिवार्य विषय में भी यदि हम लापरवाह रहते हैं या अज्ञानग्रस्त रहते हैं तो यह अधिक खतरनाक बात है ।

भोजन के विषय में हम कुछ विस्तारपूर्वक चर्चा करें । जिससे विषय स्पष्ट हो सके ।

संतुलित आहार के आवश्यक तत्त्व :

आधुनिक आहार-विज्ञानी संतुलित भोजन पर अधिक बल देते हैं । संतुलित आहार से उनका अभिप्राय ऐसे भोजन से है जिससे शरीर को पोषण मिले और उसकी सारी आवश्यकताएँ पूरी हो जायें । इस दृष्टि से वे भोजन में आठ तत्त्वों का उचित परिमाण में होना आवश्यक मानते हैं :

१. प्रोटीन २. कार्बोहाइड्रेट्स ३ वसा (चिकनाई) ४. खनिज पदार्थ लवण आदि ५ कैलशियम ६. लोहा ७. पानी (जल) ८. कैलोरी

कैलोरी वस्तुतः कोई खाद्य पदार्थ नहीं है वह तो अन्य खाद्य पदार्थों से शरीर को जो ऊर्जा प्राप्त होती है, उसे नापने की एक इकाई है ।

वस्तुतः संतुलित भोजन में तीन प्रकार के तत्त्व होने चाहिए :

१. **ह्रास-पूर्तिकारक**—दिन भर कठोर परिश्रम करने से, शारीरिक और मानसिक श्रम करने से शरीर में जिन ऊतकों की कमी हो जाती है, उस कमी की पूर्ति करने वाले तत्त्व भोजन में होने चाहिए जिससे उस क्षति की पूर्ति सहज हो सके ।

२. **स्वास्थ्यप्रद तत्त्व**—ऐसे तत्त्व जो तन-मन को स्वस्थ बनाए रखने में सक्षम हों, स्वास्थ्य की अभिवृद्धि करने वाले हों ।

३. **पोषक तत्त्व**—आहार में ऐसे तत्त्वों का

समावेश भी आवश्यक है जो शारीरिक शक्ति की वृद्धि के लिए अनिवार्य हैं । जिससे मनुष्य प्रसन्नचित्त तथा कार्यक्षम रह सके । उसकी शक्तियाँ बढ़ती रहें । उसमें प्रमाद, जड़ता आदि का प्रवेश न हो सके ।

इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति शाकाहार के द्वारा ही संभव है । शाकाहार के प्रमुख घटक हैं :

१. अनाज और धान्य से बने खाद्य पदार्थ
२. दूध अथवा दूध से उपलब्ध होने वाले पदार्थ
३. फल और साग-सब्जी
४. फलीदार साग-सब्जी; जैसे—सेम, मटर आदि ।

इन पदार्थों को उचित परिमाण में भोजन के रूप में लेने से संतुलित भोजन की सभी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं । संतुलित आहार से शरीर को अनेक लाभ होते हैं—

१. इससे शरीर में स्फूर्ति, शक्ति तथा

उत्साह का संचार होता है तथा शरीर स्वस्थ व मन प्रसन्न रहता है ।

२. यह रोग, आलस्य, जड़ता की वृद्धि नहीं करता ।

३. यह सुपाच्य होता है ।

४. इससे आयु, सत्व, तेज, स्मृति आदि की वृद्धि होती है ।

आहार के दो रूप :

आहार उसे कहा जाता है—जिससे क्षुधा की तृप्ति हो, शरीर में शक्ति का संचार हो और मन में प्रसन्नता की अनुभूति हो । इस परीक्षण प्रस्तर पर कसने से यह लगता है कि ये सब गुण शाकाहारी भोजन में ही उपलब्ध हो सकते हैं ।

आहार दो प्रकार का होता है— एक प्राकृतिक दूसरा अप्राकृतिक । प्रकृति अर्थात् भूमि-जल-धूप-वनस्पति आदि से उत्पन्न होने वाला आहार प्राकृतिक है । इसके विपरीत किसी पशु-पक्षी प्रभृति प्राणी का मांस, या अंडा आदि, अप्राकृतिक आहार की

सूची में आते हैं । अप्राकृतिक आहार तामसिक होता है । उसके सेवन से मनुष्य की प्रकृति में एक प्रकार का संघर्ष व अस्वाभाविक उत्तेजना पैदा होती है । कुछ लोग इसे महसूस करते हैं, कुछ न भी कर पायें, परन्तु वैज्ञानिकों का मन्तव्य है– अप्राकृतिक आहार–मांस आदि मनुष्य के शरीर, पाचन तंत्र व स्वभाव के अनुकूल नहीं होने से बिल्कुल अस्वाभाविक हैं और शरीर पर उसका दुष्प्रभाव होता ही है ।

स्मरण रहे मांसाहार मानवीय भोजन नहीं है । संसार में जितने भी मूर्धन्य वैज्ञानिक, धर्मचिन्तक, कवि, कलाकार, बुद्धिमान, योद्धा और राजनीतिज्ञ हुए हैं, उनमें से अधिकतर शाकाहारी हैं । आज वैज्ञानिक परीक्षणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि विकसित देशों में–जहां मांसाहार, मद्यपान आदि का अधिक प्रचलन है वहां लोगों में हार्टअटेक, हाई ब्लडप्रेशर तथा इसी प्रकार की अनेक घातक बीमारियाँ

फैली हुई हैं । दूषित व तामसिक खान-पान के कारण हत्याएं, संघर्ष, अशान्ति और उत्तेजनाएँ अधिक रहती हैं ।

मांसाहारी भोजन करने वाले प्रायः स्वभाव से उग्र, चंचल तथा बहुत शीघ्र उत्तेजित होने वाले होते हैं । श्रम करने पर शीघ्र थक जाते हैं । उनमें मानसिक एकाग्रता की कमी रहती है । दयालुता, सहयोगभावना के स्थान पर क्रूरता, स्वार्थवृत्ति और छल छद्म का प्राधान्य होता है ।

क्या मांस को भी आहार कहा जा सकता है ?

यद्यपि यह सत्य है कि संसार में ऐसे भी मनुष्य हैं जो मांसभोजी हैं, अंडे भी खाते हैं, लेकिन आहार और आहार के गुणों की दृष्टि से विचार किया जाय तो मासाहार आहार की कोटि में नहीं आता । उसमें न तो ये गुण ही हैं और न पोषक तत्त्व ही हैं जो आहार की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं । मांसाहार से स्वास्थ्य निर्माण का तो प्रश्न ही

नहीं है, अपितु वह अनेक रोगों का कारण बनता है, और स्वास्थ्य को चौपट कर देता है।

क्या मांस मानव का भोजन हो सकता है ? प्रस्तुत प्रश्न पर दो दृष्टियों से विचार करना है :

१. मानव की शरीर रचना के आधार पर

२. मांस से होने वाली हानियों के आधार पर

१. शाकाहारी प्राणियों (इनमें मनुष्य भी शामिल है) के दांत छोटे, खुण्डे, मिले हुए होते हैं और इनमें नुकीलापन नहीं होता। इसके विपरीत मांसाहारियों के दांत लम्बे, तेज, नुकीले और खूंटे बहुत मजबूत होते हैं।

२. शाकाहारियों की जीभ कम लम्बी होती है, जबकि मांसाहारियों की जीभ, अधिक लम्बी होती है।

३. अधिकांश शाकाहारी दिवाभोजी होते हैं, जबकि मांसाहारी रात्रिभोजी।

४. शाकाहारी प्राणियों की नेत्र-रचना इस

प्रकार की होती है कि उन्हें दिन के प्रकाश में स्पष्ट दिखाई देता है, रात्रि के अंधकार में उतना स्पष्ट दिखाई नहीं देता । जबकि मांसाहारियों को रात्रि के अंधकार में जितना स्पष्ट दिखाई देता है, उतना दिन के प्रकाश में नहीं ।

५. मांसाहारी और शाकाहारी प्राणियों का सबसे बड़ा अन्तर तो पाचनक्रिया और पाचन संस्थान में है ।

शाकाहारियों की पाचनक्रिया मुंह से ही शुरू हो जाती है । भोजन को चबाते समय ही उनके मुंह की लार भोजन में मिल जाती है जो भोजन को पचाने में सहायक होती है ।

इसके विपरीत मांसाहारियों की पाचनक्रिया भोजन के उदर में पहुँच जाने के बाद शुरू होती है ।

मांसाहारियों की भोजन प्रणाली छोटी होती है क्योंकि मांस शीघ्र ही सड़ने वाला पदार्थ है, अतः इनकी आंतें छोटी होती हैं

और मांस शीघ्र ही मल के रूप में बाहर निकल जाता है ।

इसके विपरीत शाकाहारियों की आंतें लम्बी होती हैं, भोजन का सही ढंग से परिपाक होता है, रस बनता है और फिर निस्सार पदार्थ मल के रूप में शरीर से बाहर निकलता है ।

सबसे बड़ी बात यह है कि मांसाहारी भी जन्मतः मांसाहारी नहीं होते । सिंह सबसे क्रूर प्राणी है और मूलतः वह मांसाहारी कहा जाता है । लेकिन सिंह शावक जन्म से ही मांस नहीं खाता, अपनी मां शेरनी का दूध पीता है, उसी के आधार पर ही वह जीवित रहता है । कुत्ते आदि सभी के लिए ऐसा ही है ।

वस्तुतः मांस इतना दुष्पाच्य पदार्थ है कि मांसाहारी पशुओं के शिशु भी उसे हजम नहीं कर पाते ।

इसलिए मांस को भोज्य पदार्थ तो कहा ही नहीं जा सकता ।

मासाहार के दोष :

१. मांस एक ऐसा घृणित पदार्थ है, जिसमें अनेक प्रकार के विष हैं, जैसे– यूरिक ऐसिड, यूरिया, मरकरी, डी. डी. टी. आदि । इन विषैले तत्त्वों के कारण खुजली, त्वचाविकार, कैंसर आदि विविध रोग हो जाते हैं ।

जबकि शाकाहार विषैले तत्त्वों से मुक्त होता है, अतः रोग होने की संभावना बहुत कम होती है ।

२ मांसाहार उत्तेजना उत्पन्न करता है, जबकि शाकाहार सहिष्णुता ।

३. मांसाहार से बुद्धि मलिन होती है, भावों में क्रूरता आती है । इसके विपरीत शाकाहार बुद्धि को निर्मल बनाता है और हृदय को करुणापूरित ।

४. मांसाहार की गणना तामसिक आहार में की जाती है । जिसका परिणाम होता है– प्रमाद, आलस्य और बुद्धि की जड़ता तथा पाप कर्मों में प्रवृत्ति, जबकि

शाकाहार सात्विक है, यह बुद्धि को निर्मल बनाता है, शरीर में स्फूर्ति का संचार करता है और शुभ प्रवृत्ति हृदय में भरता है।

५. मांस और शराब का चोली-दामन का साथ है। अक्सर देखा गया है कि मासांहारी शराबी भी होते हैं, क्योंकि मांस उदर में पहुँचने के बाद शराब पीने की ओर मनुष्य को उत्तेजित करता है। इसके विपरीत शाकाहार करने वाले मानव की मद्य की ओर रुचि प्रायः कम होती है।

६. मांसाहार का सबसे बड़ा अवगुण यह है कि यह कामवासना को भड़काता है। मांसाहारी अधिकतर कामी होता है और यदि वह शराबी भी हुआ तो कामवासना सीमा को लांघ जाती है। जितने भी बलात्कार के केस होते हैं, वे अधिकतर मांस और शराब के नशे में ही किये जाते हैं। हिंसा, हत्या, आतंकवाद आदि सभी मांस और मदिरा के परिणाम हैं। इससे सामाजिक शांति भंग होती है।

जबकि शाकाहारी सरलचित्त होता है। शाकाहार कामोत्तेजक भी नहीं होता, अतः वह सामाजिक स्थिरता और शांति में सहायक बनता है।

इनके अतिरिक्त मांस में और भी बहुत से दोष हैं : १. इसमें विटामिनों की कमी होती है, विटामिन सी तो होता ही नहीं, जो पचन-पाचन और शरीर की नीरोगता के लिए अनिवार्य है। फासफोरस का अनुपात अधिक होता है, इससे ऐंठन आदि रोग हो जाते हैं। मांस में एसिडिटी अधिक होने के कारण यह हड्डियों को कमजोर करता है। तभी तो जरा सी ठेस या चोट लगने से फ्रेक्चर हो जाता है पर ऐसा कोई भी दोष शाकाहार में नहीं होता।

इसीलिए मिनिस्ट्री आफ हीलिंग, पृ. ३१३ में कहा गया है—मास कभी उत्तम भोजन नहीं रहा, चूंकि जानवरों में रोग तेजी से बढ़ रहे हैं, इसीलिए आज इसका प्रयोग दो गुना आपत्तिजनक है।

भोजन से मानव स्वभाव में परिवर्तन :

हमारे यहाँ एक कहावत प्रसिद्ध है– जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन । यह बहुत ही अनुभवपूर्ण और सत्य है । सैकड़ों, हजारों परीक्षणों के बाद भी यह कहावत यथार्थ है । आज अनेक संस्थाएं तथा वैज्ञानिक इस प्रकार के परीक्षण तथा सर्वेक्षण कर रहे हैं कि भोजन से मनुष्य के स्वभाव में क्या परिवर्तन आता है । उन सभी की सर्वेक्षण रिपोर्ट पढ़ने पर यह नतीजा सामने आया है कि सादा, कम मिर्च मसाले वाला और सात्विक भोजन करने वालों को मांसाहार जैसा उत्तेजक आहार देने पर उनके स्वभाव में बहुत अंतर आ गया, सच्चे सात्विक वृत्ति वाले अपराधी वृत्ति के बन गये, शान्त रहने वाले चिड़चिड़े स्वभाव के हो गये और उनकी बौद्धिक क्षमता भी मंद हो गई ।

वाल्टीमोर विश्वविद्यालय के क्रिमिनो-लोजी विशेषज्ञ डाक्टर फिकाबोन ने अधिक-

तर विनम्र व्यक्तित्व के धनी लोगों को उत्तेजक भोजन देकर स्वभाव बदलते और सात्विक आहार से अपराधियों को भी सज्जनता अपनाते देखा है । (शाकाहार क्रांति-नवम्बर १९८९ आहार और अपराध वृत्ति)

आज पश्चिमी जगत में यह आम विचार चल रहा है कि विश्व को शान्ति, सहयोग और सहअस्तित्व की भावना के साथ जीना है तो शाकाहार अपनाना ही होगा । मांसाहार न केवल आरोग्य के लिए घातक है, बल्कि मानवता के लिए भी सर्वथा त्याज्य है । अप्राकृतिक भोजन है । जो लोग इसका सेवन करते हैं, उनमें तीन प्रकार के लोग हैं—

एक तो देशकाल की परिस्थितिवश मजबूर हैं ।

दूसरे वे हैं जो उत्तेजनापूर्ण स्वाद और तामसिक भोजन के आदी हैं, और

तीसरे, शरीर व आरोग्य के विषय में

दिग्रभ्रांत व अनजान हैं ।

१९८९, अप्रैल में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली के मानव-आहार विभाग द्वारा शाकाहार पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें लगभग ३00 प्रमुख चिकित्सकों ने भाग लिया । इस संगोष्ठी में यह घोषित किया गया कि १६0 प्रकार की ऐसी घातक और खतरनाक बीमारियाँ हैं जो मांसाहार से ही फैलती हैं और शाकाहार से उनकी रोकथाम की जा सकती है । (देखें, शाकाहार क्रांति : जुलाई ८९का सन्दर्भ)

आज संसार के अच्छे से अच्छे चिकित्सक और वैज्ञानिक यह मानने और कहने लगे हैं, कि मनुष्य का भोजन मांसाहार न होकर शाकाहार ही होना चाहिए ।

अण्डा : बीमारियों का कण्डा :

"आज मांसाहार की तरह ही अण्डों का प्रचार बहुत जोर-शोर से हो रहा है और

इसको शाकाहारी बताने का षड्यंत्र भी रचा जा रहा है । मेरी समझ में नहीं आता कि क्या मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए इतना नीचे भी गिर सकता है कि वह करोड़ों लोगों को रोगी और अपाहिज बनाने वाले अण्डे को शाकाहारी और शक्तिदायी बताकर उनके जीवन और आरोग्य से निर्भय खिलवाड़ भी कर सकता है । अभी कुछ दिन पहले अखबारों में यह खबर पढ़ी थी कि पाकिस्तान में एक सिपाही ने अंडा खाने की शर्त लगाई । उसने १५ अंडे खाये और खाते ही उसके शरीर में कोलस्ट्रोल इतना बढ़ गया कि हृदय गति बंद हो गई और जान से हाथ धो बैठा । इससे स्पष्ट ही है कि अंडा कितना घातक है । इस विषय में मैं स्वयं अधिक न कहकर विशेषज्ञों की खोजों का विवरण उन्हीं की भाषा में प्रस्तुत कर रहा हूँ :

अण्डे : स्वास्थ्य के लिए बेहद खतरनाक

आमतौर पर जो तथ्य सामने आये हैं

उनसे यह सिद्ध हुआ है कि अण्डे स्वास्थ्य के लिए बेहद खतरनाक हैं । इधर जो ताजा खोजें हुई हैं, उनसे मिले नतीजे इस प्रकार हैं—

कफ पैदा करते हैं

१. जर्मनी के प्रोफेसर एग्नरबर्ग का निष्कर्ष है : अंण्डा ५१.८३ प्रतिशत कफ पैदा करता है । वह शरीर के पोषक तत्वों को असंतुलित कर देता है ।'

विषावरोधी शक्ति का क्षय

२. बाल्यावस्था में अण्डे खाने से शरीर की विषावरोधी शक्ति पूरी तरह क्षीण या नष्ट हो जाती है । ऐसे बालक आगे चलकर साधारण-से-साधारण बीमारी का मुकाबला नहीं कर पाते । उनकी स्मरण-शक्ति कमजोर पड़ जाती है । उनके शरीर का स्वाभाविक विकास मंद पड़ जाता है । उन्हें पीलिया, वात, पथरी, रक्तचाप (ब्लड-प्रेसर), आँतों-में-मवाद जैसे भयंकर रोगों का शिकार होना पड़ता है । यूरिक एसिड-जैसे

मारक जहर के पेट में जाने से पाचन-तन्त्र काफी शिथिल हो जाता है । उसमें सड़ाँध आ जाती है ।

आँतें सड़ जाती हैं

३. अण्डे खाने से पेचिश तथा मंदाग्नि-जैसी बीमारियाँ घर कर जाती हैं तथा बाद में आमाशय कमजोर पड़ जाता है, और आँतें सड़ जाती हैं । यह कोरी कल्पना नहीं है वरन् इंग्लैड के मशहूर चिकित्सक डॉ. राबर्ट ग्रास तथा प्रो. ओकाडा डेविडसन इरविंग का पुख्ता मत है ।

मनुष्यों के लिए जहर

४. अमेरिका के डॉ. ई. बी. एमारी तथा इंगलैंड के डॉ. इन्हा ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तकों 'पोषण का नवीनतम ज्ञान' और 'रोगियों की प्रकृति' में साफ-साफ माना है कि 'अण्डा मनुष्य के लिए जहर है' । बम्बई-स्थित हाफकिन इंस्टीट्यूट ने पोषण और तन्दुरुस्ती' नामक किताब में

अण्डे खाने से होने वाले नुकसानों को प्रमाणित किया है ।

हृदय-रोग, एक्झीमा, लकवा आदि

५. इंग्लैंड के डॉ. आर. जे. विलियम का निष्कर्ष है : 'संभव है अण्डा खाने वाले शुरू में अधिक स्वस्थता और चुस्ती का अनुभव करें, किन्तु बाद में उन्हें हृदय-रोग, एक्झीमा, लकवा-जैसे भयानक रोगों का शिकार हो जाना पड़ता है' ।

बौद्धिक और भावनात्मक क्षति

६. बहुत कम लोग इस तथ्य को जानते हैं कि अण्डे खाने से न सिर्फ शरीर की शक्ति क्षीण होती है वरन् गहन बौद्धिक और भावनात्मक क्षति भी होती है ।

कैंसर की आशंका

७. मांसाहार, जिसमें अण्डा भी शरीक है, से लाखों लोगों को कैंसर की असह्य पीड़ा सहनी होती है । स्पष्टतः अण्डा एक विज्ञापनी और व्यापारिक षड्यन्त्र है, उसे

किसी भी हालत में बर्दाश्त नहीं किया जाना चाहिए ।

३०% अण्डों में डी.डी.टी.

८. ३० प्रतिशत अण्डों में डी.डी.टी. होता है । पौल्ट्रीज को जिस तरह रखा जाता है उसमें-से/उस प्रक्रिया में-से हो कर डी.डी.टी. मुर्गी के पाचन-तन्त्र में घुल-मिल जाता है । फ्लोरिडा (अमेरिका) के कृषि-विभाग की हेल्थ बुलेटिन ने इस तथ्य को प्रकट किया है । 'वर्ल्ड हेल्थ' (अग.-सित. १९८३) के पृ. ५ पर कहा गया है कि एंटार्कटिका में पैग्विनों की चर्बी में डी.डी.टी. पाया गया है । जब पैग्विनों में यह प्रदूषण के जरिये पहुँच सकता है तब मुर्गियों में तो पहुँच ही सकता है । यह भी अण्डा खाने वालों की सेहत पर बुरा असर डालता है ।

कोलेस्टेरोल से नुकसान

९. एक अण्डे में तकरीबन ४ ग्रेन कोलेस्टेरोल होता है, जिससे

हाई-ब्लडप्रेसर, किडनी की बीमारियाँ जैसे रोग पैदा हो जाते हैं । यह निष्कर्ष डॉ. रॉबर्ट ग्रास का है ।

पेट सड़ जाता है

१0. अण्डे में कार्बोहाइड्रेट्स बिल्कुल नहीं होते; कैल्शियम की मात्रा भी न्यूनतम होती है फलस्वरूप पेट में सड़ाँध पैदा हो जाती है । यह निष्कर्ष डॉ. ई. वी. मेक्कालम का है ।

मनुष्य चूहा नहीं है

११. सब जानते हैं कि हमें प्रोटीन चाहिए; और यह कि मांस और अण्डे प्रोटीन के सांद्रित (कंसेंट्रेटेड) स्रोत हैं; किन्तु यह बहुत कम लोग जानते हैं कि प्रोटीन-स्रोतों को खानें की तमाम सिफारिशें चूहों की पोषण-जरूरतों से संबन्धित खोजों की बुनियाद पर खड़ी हुई हैं । चूहों को जन्म-के-बाद मानव-शिशु की अपेक्षा दस गुना अधिक प्रोटीन की जरूरत होती है ।

इसके अलावा मुर्गियाँ खुद कई असाध्य रोगों की शिकार होती हैं, जिनके इलाज पर पौल्ट्री फार्मों को अनाप-शनाप धनराशि खर्च करनी होती है । ये बीमारियाँ या तो मुर्गियों को थोक में मौत के घाट उतार देती हैं या फिर खाने वाले के पेट में दाखिल हो जाती हैं और उसके जीवन को जीवित नरक बना देती है ।

क्षय, संग्रहणी, पीलिया, कैंसर, दमा ऐसी बीमारियाँ हैं, जो अण्डे खाने से होती हैं । इन बीमारियों की एक बृहत् सूची ए. सी. कैम्पबेल रोजर्स ने अपनी किताब 'प्रोफिटेबल पौल्ट्री कीपिंग इन इंडिया' के अध्याय २२, पृ. २१४-२३४ में विस्तार से दी है । इस पुस्तक के पृ. २१५ पर साफ-साफ लिखा है कि मुर्गियों को खाने में ताजा कीड़े, केंचुए, ताजा मांस और ग्रीन बोन देना जरूरी होता है ताकि वे अच्छे अण्डे दें (The most important item in their diet is a sufficiency of protein food either in the

forms of fresh worm and insects or fresh lean meat and green bone, for without this important item of food your hens will neither lay nor keep in sound health)। इतने पर भी माना जाय कि अण्डे फलाहार या शाकाहार हैं ?

—डॉ. नैमीचंद जैन

मांसाहार से मनुष्य के स्वास्थ्य पर विभिन्न प्रकार के कुप्रभाव होते हैं—

- कई प्रकार की गंभीर बीमारियां पैदा होती हैं । जैसे मोटापा, हाई-ब्लडप्रेसर, कैंसर, गठिया, डायबिटीज, हृदय-रोग ।
- मांस तथा अण्डों में कोलेस्टेरोल की मात्रा अधिक होने से हृदय-रोग, रक्तचाप, गुर्दों के रोग तथा पित्त की थैली में पथरी आदि रोग उत्पन्न होते हैं ।
- मांसाहार से शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति कम होती जाती है ।

- मांसाहारियों का पैशाब तेजाब युक्त अधिक होता है । जिससे शरीर के खून का तेजाब और क्षार के बीच का अनुपात बिगड़ जाता है इससे हड्डियां कमजोर पड़ती हैं ।
- मांसाहार से मनुष्य का स्वभाव बिगड़ जाता है । तामसी वृत्ति बढ़ती है, कलह, लूट-खसोट, हत्या आदि की भावनाओं को उभारने में मांसाहार जिम्मेदार होता है ।
- मांसाहारी स्वभाव से क्रूर, दुःसाहसी, डरपोक, कामी, क्रोधी चिड़चिड़ा और आलसी होता है ।
- अर्थशास्त्रियों के अनुसार– मांसाहार शाकाहार की अपेक्षा मंहगा तो है ही, दुष्पाच्य भी है । एक मांसाहारी मानव सात शाकाहारियों का भोजन खा जाता है अथवा एक मांसाहारी के भोजन पर जितना खर्च होता है

उतने में सात शाकाहारियों का पेट भर सकता है।

शाकाहार में भी विवेक :

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट हो ही गया है कि शाकाहार ही मानव के लिए श्रेष्ठ और सर्वांगपूर्ण है, आरोग्यतावर्द्धक है। लेकिन इसमें भी विवेक रखना आवश्यक है।

सभी जानते हैं कि दूध, घी, फल आदि पौष्टिक हैं, शरीर की कार्यक्षमता और नीरोगता बनाए रखते हैं किन्तु इनका सेवन यदि अधिक मात्रा में किया जाय या अनुचित रूप से किया जाय तो ये भी रोगवर्धक बन जाते हैं—जैसे अधिक मात्रा में घी के प्रयोग से कोलस्टेरोल बढ़ जाता है, जो हृदय-रोग, हार्ट फेल, हार्ट अटेक का प्रमुख कारण बनता है।

शाकाहार में भी विवेक योग्य है :

१. अति गरिष्ठ

२. अति मीठा

३. कुपथ्य

४. अति मात्रा

इन चारों को एक शब्द में निषिद्ध आहार भी कहा जा सकता है ।

गरिष्ठ आहार :

गरिष्ठ का अभिप्राय इतना भारी भोजन, जिसे शरीर का पाचन संस्थान सरलता से हजम न कर सके । शास्त्रीय भाषा में ऐसे भोजन को राजसिक और तामसिक कहा गया है ।

गरिष्ठ आहार में तले हुए पदार्थ तथा चटपटे मसालेदार पदार्थों की गणना की जाती है । बाजार में हलवाइयों के बने हुए भोज्य पदार्थ गरिष्ठ होते हैं । मिठाई, नमकीन आदि सभी प्रकार के पदार्थ इसमें सम्मिलित हैं ।

इन पदार्थों के दो बड़े दोष हैं : १. शरीर में आलस्य उत्पन्न करना २. पाचन संस्थान में गड़बड़ी करना ।

आलस्य तो व्यावहारिक और आध्यात्मिक दृष्टि से मानव के लिए हानिकारक है ही, लेकिन पाचन संस्थान की गड़बड़ी भी कम हानिकारक नहीं है । इनके सेवन से अपच आदि अनेक रोग हो जाते हैं ।

अति मीठा :

यद्यपि मधुर रस को वैद्यक शास्त्र में पित्त, वात (वायु विकार आदि रोगों) का नाश करने वाला कहा गया है, लेकिन कब ? जब उचित परिमाण में इसका प्रयोग किया जाय और यदि अधिक परिमाण में, अतिमात्रा में मीठा खाया जाय तो कई रोगों का कारण बन जाता है, जिनमें प्रमुख हैं-मधुमेह, डायबिटीज आदि ।

वैसे भी आधुनिक आहार विशेषज्ञ मीठे को (विशेष रूप से मिलों में बनी शक्कर चीनी -सुगर) को मीठा जहर कहते हैं और बताते हैं कि यह हड्डियों को कमजोर करती है ।

अतः अतिमात्रा में मीठा भी शरीर के

लिए हानिकारक है ।

कुपथ्य :

पथ्य का अभिप्राय वह भोजन अथवा भोज्य पदार्थ है, जो शरीर में जाकर रस, रक्त बनाने में तुरन्त सक्षम हो, शरीर जिसे चाहे, सुरुचिपूर्ण ढंग से ग्रहण करे । वैद्य भी रोगी को पथ्य बताते समय इसी बात का ध्यान रखता है ।

इसके विपरीत कुपथ्य वह भोज्य पदार्थ है, जिसे शरीर सुरुचिपूर्वक ग्रहण न करे, इसका विरोध करे । जो भोजन रस-रक्त-ओज-तेज में परिणत न होकर शरीर में विकार बढ़ाता है, वह कुपथ्य कहलाता है ।

कुपथ्य के प्रति भिन्न-भिन्न प्रकार से शरीर अपनी प्रतिक्रिया करता है । कारण यह है कि उस भोजन को शरीर अपने अनुकूल नहीं पाता, उसे बाहर निकालना चाहता है । अथवा मानव को चेतावनी देता है कि ऐसा आहार न किया जाय ।

आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली में इसे एलर्जी कहा जाता है । डाक्टरों की भाषा में एलर्जी वह है जिस वस्तु को शरीर नहीं चाहता, अथवा जो वस्तु शरीर को अनुकूल नहीं पड़ती, उस वस्तु के प्रति शरीर विभिन्न प्रकार के विकारों के रूप में प्रतिरोध प्रगट करता है । यही एलर्जी कहलाती है ।

कुपथ्य की विशेषता यह है कि इसका कोई सामान्य नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता । एक व्यक्ति को अंगूर से एलर्जी हो सकती है तो दूसरे को आम से । किसी को बाजरी से एलर्जी होती है तो किसी को मोठ से ।

अतः सीधी सी बात है कि व्यक्ति विशेष को जो भोजन रुचिकर हो, जिसके प्रति शरीर अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त करे, उसके लिए वही भोजन पथ्य है और शरीर के प्रतिकूल भोजन कुपथ्य या अपथ्य है ।

अति मात्रा :

अति मात्रा का अभिप्राय है—अपनी

पाचन क्षमता से अधिक भोज्य पदार्थ उदरस्थ कर लेना । उचित मात्रा में दूध आदि पदार्थ लाभकारी होते हैं जबकि इन्हीं पौष्टिक और लाभदायी पदार्थों का अतिंमात्रा में सेवन रोगों का संवाहक बन जाता है ।

वैसे अति मात्रा क्या है और उचित मात्रा क्या है ? इसका निर्धारण बहुत ही टेढ़ा प्रश्न है । एक व्यक्ति ३-४ लीटर दूध को पानी की तरह हजम कर जाता है और कोई व्यक्ति ऐसा भी होता है जिसके लिए आधा लीटर दूध भी वायु विकार एवं अपच का कारण बन जाता है ।

इस स्थिति में अति मात्रा की सीमा निर्धारण करना भी बड़ा कठिन है । यह तो व्यक्ति विशेष की पाचन क्षमता पर ही निर्भर है ।

फिर भी इतना कहना आवश्यक है कि "अति सर्वत्र वर्जयेत्" अति का सर्वत्र वर्जन

करना चाहिए । भोजन के विषय में भी यह सत्य ही है । अति मात्रा में मीठा खाना, भोजन करना, गरिष्ठ और कुपथ्य खाद्य पदार्थों को उदरस्थ करना अन्ततोगत्वा हानिकारक ही है ।

इस संदर्भ में "अति" आदि शब्दों का अभिप्राय है शरीर की पाचन क्षमता से अधिक खाना ।

अति के विपरीत शब्द "अल्प" है । अल्प का अभिप्राय है—कम, थोड़ा । सामान्यतया अल्प भोजन को हितकारी माना गया है । लेकिन अल्प इतना अल्प न हो कि शरीर ही दुर्बल हो जाय, पोषण तत्व उचित मात्रा में न मिलने से शरीर रोगों का घर बन जाय, कार्यक्षम ही न रह सके ।

उचित ही उचित :

"अति" और अल्प के मध्य बिन्दु को ध्यान में रखें ; जिसे "उचित" कहा जाता है । उचित का अभिप्राय है--शरीर के

अनुकूल, रस-रक्त-ओज-तेज का निर्माण करने वाले सुपाच्य, हल्के और शुद्ध खाद्य पदार्थों का इतनी ही मात्रा में सेवन किया जाय, जिससे शरीर स्वस्थ रहे, मन निर्मल और बुद्धि स्फुरणशील । आत्मा में भी शुभ पवित्र करुणापूरित भावनाओं का संचार सहजतया होता रहे ।

इन सब बातों को जैन आहार-जैन विधि से तैयार किया हुआ आहार, बहुत ही श्रेष्ठ रीति से पूर्ण करता है ।

जैन आहार-मीमांसा :

जैन आहार की विशेषता दो प्रकार से है- आहार बनाने में भी और भोजन करने में भी ।

आहार जहाँ बनता है, उस स्थान का नाम है-रसोईघर । रसोईघर को ही किचिन कहते हैं, आधुनिक भाषा में । पहले रसोईघर ही भोजन बनाने और खाने का स्थान होता था, ये दोनों काम रसोईघर में

ही होते थे, लेकिन आधुनिक युग में रसोईघर भी विभाजित हो गया- १. किचिन और २. डाइनिंग रूम के रूप में ।

किचिन वह स्थान, जहाँ भोजन बनाया जाता है और डाइनिंग रूम, जहाँ घर के सदस्य अपने अतिथियों, मित्रों आदि के साथ बैठकर भोजन करते हैं ।

जहाँ तक स्वच्छता का प्रश्न है, वह तो प्रत्येक रसोईघर में रखी ही जाती है, यहाँ तक कि होटलों में भी स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता है । जैन रसोईघर अथवा किचिन में भी स्वच्छता तो रखी ही जाती है । साथ ही कुछ ऐसी विशेषताएँ भी हैं, जो अन्यत्र नहीं मिलतीं ।

जैन आहार की सबसे पहली विशेषता है—विशुद्धता । विशुद्धता से यहाँ पर चार प्रकार की विशुद्धि अपेक्षित है—

१. खाद्य-पदार्थ-शुद्धि—भोजन के पदार्थ जैसे—दाल, चावल आदि शुद्ध हों, अच्छी

तरह साफ किये हुए हों, अनाज को (गेंहूँ आदि को) अच्छी तरह छान-बीनकर, कंकड़ आदि साफ करके उसे पिसवाया गया हो। इसी प्रकार शाक-सब्जी आदि अच्छी तरह देखभाल कर सुधारी हो। मसाले आदि तथा तेल-घी जितनी वस्तुएं भोजन में प्रयोग की जाती हैं, सभी शुद्ध हों, चावल, गेहूँ आदि में प्रायः इली (छोटी लटें) पड़ जाती हैं, अगर ये भोजन के साथ ही पेट में चली जाती हैं तो शुद्ध भोजन को भी विषाक्त और रोगकारी बना देती हैं। गेंहूँ में मिट्टी, कंकड आदि भी पथरी बनाते हैं। इसलिए खाद्य पदार्थ की शुद्धि से मतलब है वस्तुओं को साफ व जीव रहित रखें।

दिनांक १५ अप्रैल (१९९०) के समाचार पत्रों में पढ़ा कि बस्ती जिला (उ. प्र.) में एक गांव में तिलक समारोह की दावत में

जहरीला भोजन खाने से १५०-२०० व्यक्ति मर गये ।

भोजन में जो पूड़ियां बनीं थीं उनके गेहूँ में कीट नाशक दवा मिली थी, जो बिना साफ किये ही आटा पिसवा लिया जिससे गेहूँ का आटा विषाक्त हो गया, वही रिश्तेदारों, मित्रों व स्वयं की मौत का कारण बन गया ।

२. रसोईघर स्वच्छ तो हो ही, साथ में उसमें प्रकाश और स्वच्छ वायु का निराबाध आवागमन होता रहे जिससे जीव-जन्तु स्पष्ट दिखाई दे सकें । जैन रसोईघर में साधु-साध्वी आदि सुगमता से आ सकें और श्रावकों व गृहस्वामी तथा घर के सभी सदस्य सुपात्रदान का लाभ ले सकें ।

३. तीसरी शुद्धि है काल शुद्धि । काल शुद्धि का अभिप्राय है— भोजन दिन में ही बना

हुआ हो और दिन में ही खाया जाय, रात्रि को नहीं ।

४. भाव शुद्धि—इसका सम्बन्ध भोजन बनाने से भी है और खाने से भी है । भोजन बनाते समय भी भाव शुभ हों, हृदय में प्रसन्नता और हर्ष हो तथा खाते समय भी हर्ष और प्रसन्नता का वातावरण हो ।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है भोजन बनाने वाला भी सात्विक वृत्ति का हो, स्नेह और वत्सलतापूर्वक भोजन बनाता हो तो वह भोजन मधुर और स्वास्थ्यकारी होता है । यदि बनाने वाला द्वेषपूर्वक, झुंझलाहट से या क्रोध में तमतमाया हुआ बनाता है तो भोजन भी नशीला हो जाता है । इसी प्रकार भोजन करते समय शांति, प्रेम और प्रसन्नता का भाव रहे तो वह भोजन पथ्यकारी होता है; क्रोध, शोक की भावना के साथ खाया हुआ अन्न, रक्त को दूषित करता है ।

भक्ष्य-अभक्ष्य :

आहार में भक्ष्य और अभक्ष्य ये दो शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण हैं । भक्ष्य का अभिप्राय है, जो पदार्थ खाने योग्य हैं अथवा जैन श्रावक जिन पदार्थों को खा सकता है ।

इसके विपरीत अभक्ष्य उन पदार्थों को कहा जाता है जिनका उपयोग करना श्रावक के लिए उचित नहीं माना जाता । श्रावक को ऐसे पदार्थों का उपयोग नहीं करना चाहिए ।

ग्रन्थों में अभक्ष्यों की संख्या २२ बताई गई है, लेकिन अभक्ष्य पदार्थ तो अनेक प्रकार के हो सकते हैं ।

उदाहरण के लिए-संसाधित आहार (तैयार आहार अथवा डिब्बा बंद आहार) को लिया जा सकता है । यद्यपि यह आहार शाकाहार की सीमा में आता है, मांस आदि का प्रयोग इसमें नहीं होता, वायुरोधी

(एयरटाइट) डिब्बों में बंद होता है, सुविधाजनक भी है, तैयार मिलते हैं, खाओ और झट अपने काम में लग जाओ ।

फिर भी स्वास्थ्यकारी आहार की दृष्टि से यह आहार लाभप्रद नहीं है । इस प्रकार का आहार बासी और निःसत्व होता है । अनेक स्वास्थ्यविज्ञानी इस प्रकार के संसाधित, डिब्बा बंद भोजन को स्वास्थ्य के लिए अहितकर मानते हैं ।

मिलावट वाले पदार्थ भी लाभप्रद नहीं होते हैं । इनसे अनेक प्रकार के उदर-सम्बन्धी रोग हो जाते हैं और सबसे बुरा असर तो गुर्दों (किडनी) पर होता है, गुर्दे खराब हो जाते हैं, अपना काम सही ढंग से पूरा नहीं कर पाते ।

अतः शाकाहारी पदार्थों में भी हानिकर खाद्य पदार्थों की सूची बहुत लम्बी हो सकती है ।

इसीलिए जैन आहार में भक्ष्याभक्ष्य का विशेष ध्यान रखा जाता है—यहाँ तक कि पानी भी छानकर ही प्रयोग में लाया जाता है—भोजन बनाने में भी और पीने में भी। अनछाने पानी का उपयोग जैन नहीं करता।

यद्यपि आधुनिक युग में कुछ स्थलों पर वाटरवर्क्स (जलनिगम) छानकर और क्लोरीन आदि के संयोग से शुद्ध और कीटाणु रहित करके पेयजल बनाकर नलों में पाइपलाईन द्वारा सप्लाई करता है, हमने स्वयं देखा है कि नल के पानी को छानने पर कई बार त्रस जीव (क्षुद्रजीव) निकलते हैं।

ऐसा इसलिए होता है कि बड़े शहरों में गटरपाईप और स्वच्छ जल की पाइप लाइन समानान्तर पास-पास ही भूमिगत पड़ी होती हैं, कभी-कभी लीकेज होने से दोनों लाइन जुड़ जाती हैं और स्वच्छ पेयजल अस्वच्छ अपेयजल हो जाता है। इसके अतिरिक्त लम्बे समय तक पानी की टंकी में

पानी भरा पड़ा रहता है जिससे भी उसमें क्षुद्र जीव पैदा हो जाते हैं ।

ऐसी दशा में और गर्मियों के दिनों में जब पानी की कमी हो जाती है तब जल-विभाग के अधिकारी भी समाचारपत्रों में सूचना निकालते हैं—जनता पानी को उबालकर और छानकर पीये तथा भोजन बनाने के उपयोग में ले ।

यह जैन मनीषियों की दीर्घदृष्टि ही कही जायेगी कि उन्होंने सैकड़ों, हजारों वर्ष पहले ही जैन श्रावकों को और यहाँ तक कि सभी मनुष्यों को छने पानी के प्रयोग की प्रेरणा दी ।

एक प्रसिद्ध सूक्ति है—

दृष्टिपूतंन्यसेद्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्

आंख से सामने का रास्ता देखकर पैर रखो और कपड़े से छानकर पानी पीओ, तो अनेक रोगों से बचते रहोगे ।

आज के समय में तो ५०% बीमारियां पानी की अशुद्धि के कारण होती हैं ।

छने पानी के साथ ही यदि प्रासुक पानी (उष्णजल) की परम्परा का निर्वाह किया जाय तो संभवतः अनेक उदर सम्बन्धी रोग अपने आप खत्म हो जायेंगे । बड़े शहरों में डाक्टर लोग वौयल वाटर (उबला जल) पीने की सलाह देते हैं । भारत में आने वाले विदेशी प्रायः मिनरल वाटर पी के रहते हैं, इसलिए कि अशुद्ध अनछने जल के द्वारा पेट में अनेक प्रकार के कीड़े-जन्तु चले जाते हैं ।

इसलिए जितना ध्यान अभक्ष्य पदार्थ पर दिया जाता है, उतना ही अपेय, अशुद्ध जल पर भी देना चाहिए, इससे हिंसा से भी बचाव होगा और अनेक खतरनाक बीमारियों से भी बचा जा सकेगा ।

दिवा भोजन :

प्राचीन काल से जैनत्व के दो प्रमुख व्यावहारिक लक्षण रहे हैं—सभी कार्यों में छने पानी का उपयोग करना और दिन में ही अर्थात् सूर्य डूबने से पहले ही भोज्य और

पेय पदार्थों का उपयोग कर लेना, सूर्यास्त के बाद न कुछ खाना और न कुछ पीना ।

सूर्यास्त से पहले ही खाना-पीना समाप्त करने की परम्परा भारत में तो थी ही, वैदिक, ब्राह्मण, बौद्ध आदि सभी इस परम्परा को मानते थे, साथ ही यह विश्व भर में व्याप्त थी ।

अंग्रेजी, जिसे आज विश्वभाषा का गौरव प्राप्त है, उसके ही आहार सम्बन्धी शब्दों को उदाहरण स्वरूप ले लीजिए ।

पहला शब्द लीजिए-"ब्रेकफास्ट"-यह प्रातःकालीन नाश्ते के लिए प्रचलित है । इसका शब्द संयोजन देखिए—ब्रेक=तोड़ना, फास्ट=उपवास । शब्दार्थ हुआ—उपवास को तोड़ना । इसका वाच्यार्थ और व्यंजनार्थ है-रातभर कुछ भी खाया-पीया नहीं, उपवास किया, प्रातः नाश्ते के साथ उस उपवास को तोड़ा । जैन शब्दावली में रात्रि उपवास का पारणा करना "ब्रेकफास्ट" कहा जा सकता है।

दूसरा शब्द लीजिए-"डिनर" । यह शब्द आज रात्रि भोजन के लिए रूढ़ हो गया है, लेकिन शब्द कोष (Chamber's Dictionary) में इसका शब्दार्थ दिया है-(Chief meal of the day) दिन का प्रधान भोजन । इसकी उत्पति लेटिन शब्द द्गह्य और Jejunus से हुई है जिसका अर्थ है— इस भोजन के बाद कुछ भी न करना)Des-expressing undoing, Jejunus--fasting) और कुछ भी न खाना ।

वैसे "डिनर" शब्द से दिन के भोजन की ध्वनि आभासित होती है ।

रात्रिभोजी को भारत में निशाचर (रात में खाने वाला) कहा जाता था और अंग्रेजी के Devil, Demon (राक्षस, दैत्य) आदि शब्द भी इसी अभिप्राय में प्रयुक्त होते थे ।

तथ्य यह है, मानव के लिए प्रकृति के अनुसार दिन काम के लिए और रात्रि का समय विश्राम के लिए निर्धारित था ।

परम्परारूप में मानव सूर्योदय होते ही काम में लग जाता दिन भर परिश्रम करता जीविकोपार्जन करता और सूर्यास्त होने से पहले घर लौट आता और सूर्य डूबने से पहले आहार-पानी से निवृत्त हो जाता था ।

रात्रि के समय का उपयोग वह अपने-अपने इष्टदेवों के स्मरण में करता और फिर विश्राम के लिए—शरीर की थकान मिटाने के लिए सो जाता, भरपूर नींद लेकर तरोताजा होकर रात्रि के अन्तिम प्रहर में प्रभु भजन में लग जाता और फिर सूर्योदय होते ही अपने काम में लग जाता, कर्मशील बन जाता ।

इसीलिए तो सूर्य को जग-प्रबोधक और प्राणिमात्र को कर्मशील बनाने वाला कहा गया है ।

दिवा-भोजन के सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान का निश्चित सिद्धान्त यह है कि सूर्य

की किरणों से अनेक ऐसे जीवाणु पैदा नही होते जो भोजन को विषाक्त बनाते हैं, लेकिन सूर्यास्त के बाद जब सूर्य की किरणें नहीं रहती हैं तो बैक्टीरिया (सूक्ष्म जीवाणु) तेजी से बढ़ते हैं और भोजन को विषाक्त बना देते हैं ।

संभवतः यही कारण है कि आजकल ऐसे अनेक रोग फैल रहे हैं जो पहले कभी भी सुनने में भी नहीं आये । चिकित्सा वैज्ञानिक भी चकित हैं । वे एक रोग की औषधि का अनुसंधान करते हैं तब तक दस नये रोग खड़े हो जाते हैं ।

तथ्य यह है कि प्रायः ये सब रोग रात्रि-भोजन की देन है ।

रात्रिभोजन का प्रचार-प्रसार विद्युत अनुसंधान के बाद अधिक रूपेण हुआ । विद्युत के प्रकाश ने रात्रि को दिन के समान बना दिया । कल-कारखानों ने मनुष्य के

जीवन को मशीन जैसा बना दिया । ८-८ घंटों की तीन पालियों में काम होने लगा । इसके परिणामस्वरूप मनुष्य रात्रि-भोजन के लिए विवश हो गया । इस विवशता ने आदत का रूप ले लिया । अब तो संसार भर में और भारत में भी यही दशा है । रात्रि-भोजन का प्रचार बढ़ता ही जा रहा है । इससे नींद का समय भी घट गया, रात को भोजन करने पर पाचन में भी देरी होती है, फिर अच्छी नींद भी नहीं आती । इस कारण मनुष्य का शरीर थका-थका, पेट भारी, मन अशांत, चिड़चिड़ा और शरीर अशक्त सा रहने लग जाता है ।

इस प्रकार चाहे धार्मिक दृष्टि से विचार किया जाय अथवा स्वास्थ्य की दृष्टि से, रात्रि भोजन हानिकारक ही है ।

आहार शुद्धि के साथ भावना का योग भी :

जैन आचार-विचार के अनुसार भक्ष्या-

भक्ष्य का विवेक, रात्रि-भोजन-त्याग के पश्चात् अब थोड़ा सा भावना और भोजन के समय की सावधानियों पर भी विचार करें :१. भावना होती है, मन की शुभाशुभ प्रवृत्ति । भोजन करते समय सदा शुभ भावना ही रखें । अनेक लोगों को भोजन करते समय पुस्तकें व अखबार पढ़ने की तथा वार्तालाप करने की आदत होती है, इससे कभी-कभी तो उनको यह भी पता नहीं चलता कि वे क्या खा रहे हैं, उसका क्या स्वाद है ? स्वास्थ्य की दृष्टि से इस प्रकार खाने से रस नहीं बनता, भोजन में रुचि व ध्यान रहने से खायी जाने वाली वस्तु को अच्छी प्रकार से देख भी सकते हैं, कहीं सब्जी में कीड़े या मच्छर चले जायें तो बातों आदि में क्या पता चलेगा ? अतः पुस्तकें व अखबार के पढ़ने से व वार्तालाप से मन के विचार भी उनसे प्रभावित होते

हैं, उस समय विचार प्रसन्न या पवित्र न रहे, भावों में उत्तेजना या घबराहट हो, चंचलता या अस्थिरता हो तो भोजन का शरीर पर भी उचित प्रभाव नहीं पड़ता ।

२. थाली पर बैठते समय मन में विचार करें—इस समय कोई साधु-सन्त, त्यागी-व्रती या अतिथि आ जाय तो उसे आहार से प्रतिलाभित करके अपने इस अन्न को और जीवन को सफल बनाऊँ । भोजन के समय दूसरे को खिलाने व दान देने की भावना करने से भोजन का सात्विक आनंद दुगुना हो जाता है ।

इस भावना से त्यागवृत्ति पैदा होगी, आहार के प्रति आसक्ति कम होगी और यदि संयोगवश कोई संत पधार गये तो भावना सफल होने से जो आत्मिक आनंद आपको उपलब्ध होगा, वह वर्णनातीत होगा, गूँगे केरी शर्करा, खाय-खाय मुस्काय । शालिभद्र,

के जीव ने पूर्वभव में इसी प्रकार सुपात्र दान देकर विराट वैभव प्राप्त किया ।

अन्य सावधानियाँ :

१. भोजन करते समय स्वच्छ हृदय और शांत मन रहना चाहिए ।

२. भोजन में उतावली करना उपयुक्त नहीं है । अच्छी तरह चबाकर खाने से भोजन जल्दी हजम होता है । अक्सर लोग दांतों का काम आंतों से लेने के आदी हो गये हैं । जल्दी-जल्दी खाना, बिना ठीक प्रकार चबाये खाना, इससे अन्न आंतों में जाकर देर तक सड़ता है, पचन होने में समय लगता है और खाने के बाद पेट तन जाता है, अफरा आ जाता है ।

३. तीव्र क्रोध की अवस्था में, अथवा किसी से झगड़ा हो गया हो तो तत्काल भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसी दशा में भोजन विष रूप बन जाता है । क्रोध, द्वेष, भय और चंचलता चारों ही भावनाएँ भोजन के समय न हों तो श्रेयस्कर है ।

४. अधिक गर्म भोजन करने से प्यास अधिक लगती है और अधिक ठंडा भोजन दुष्पाच्य हो जाता है, अतः ऐसा भोजन करें जो न अधिक गर्म हो और न एकदम ठंडा हो ।

५. भोजन करने से पहले देव-गुरु-धर्म-इष्टस्मरण अवश्य करें । इससे मन शांत होगा, कषाय कम हो जायेगी । भोजन का रस शांतिदायी बनेगा ।

६. अपच होने पर भोजन न करना ही हितावह है ।

७. भोजन करते समय मौन रखें । यह आरोग्य की दृष्टि से भी उत्तम है ।

८. स्थिर चित्त से शांतिपूर्वक भोजन करने से अनेक लाभ होते हैं ।

वैद्यों व स्वास्थ्यज्ञानियों का कहना है-आधा पेट खाद्य पदार्थों से भरें, एक चौथाई भाग पानी से भरें और उदर का चौथा भाग वायु संचरण के लिए खाली रखें । यह आहार की उचित मात्रा है । इस प्रकार भोजन करने से उदर संबंधी विकार

नहीं होते । पेट पर अफरा व तनाव नहीं आता, भोजन शीघ्र पच जाता है ।

इसी प्रकार के अन्य नियम और सावधानियाँ भोजन के संबंध में बताई जा सकती हैं किन्तु इतनी बातें भी ध्यान रखी जायें तो आहार नीरोगताप्रद होने के साथ-साथ शुभवृत्तिकारक भी सिद्ध होगा ।

विशेष ध्यान रखने योग्य :

एक बात पर विशेष महत्व दें । आप अपने पेट को कूड़ादान न समझें और न ही पाचन यंत्रों को घड़ी-यंत्र ।

जिस तरह घड़ी (वाच) बिना एक क्षण भी रुके, निरंतर गति करती रहती है, वैसी स्थिति उदर के पाचन यंत्रों की नहीं है, अपितु कुछ उससे भिन्न है ।

जिस तरह आप थकते हैं, विश्राम चाहते हैं, उसी प्रकार आपका पाचन तंत्र भी विश्राम चाहता है । जिस तरह आप सप्ताह में एक दिन अपने कार्यालय से अवकाश लेते हैं, उसी प्रकार अपने पाचन

तंत्र को भी अवकाश दें । पाचन तंत्र को विश्राम देना बहुत महत्त्वपूर्ण है ।

वह अवकाश है—उपवास । उपवास बहुत उपयोगी है— स्वास्थ्य के लिए यह परमौषध है । एक दिन का विश्राम मिलने से पाचन तंत्र अधिक कार्यक्षम बन जाता है ।

यदि उपवास न कर सकें तो एकाशन ही करें । इससे भी आपको बहुत लाभ होगा । एकाशन न कर सकें तो ऊनोदरी का अभ्यास तो अवश्य रखें । भूख से कम खाना, लम्बी उम्र जीना—यह स्वर्ण सिद्धान्त सदैव स्मरणीय है ।

उपवास, एकाशन, ऊनोदरी आदि ऐसे उपाय हैं जो स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी हैं । औषध न होकर भी समस्त रोगों के लिए परमौषध रूप है । ऊनोदरी तो वास्तव में ही गुणोदरी है (गुणों की खान है) ।

कूड़ादान से मेरा अभिप्राय है जब मन

में आया और जो सामने दिखाई दिया वही मुँह के रास्ते उदरस्थ कर लिया । न कोई नियम, न कोई विवेक । अँग्रेजी में इस प्रवृत्ति को कहा जाता है-Every time is meal time.

ऐसी आदत न डालिए । एक भोजन से दूसरे भोजन के बीच में ५-६ घंटे का अन्तर होना चाहिए, जिससे पहले किया हुआ भोजन पच जाय । ५ घंटे के पहले बार-बार भोजन करने से पाचन यंत्र बिगड़ सकता है और भूख अनुभव नहीं होगी । अब उपसंहार के रूप में मैं आचार्य उमास्वाति की पंक्तियां प्रस्तुत कर रहा हूँ जो इस विषय में अत्यन्त उपयोगी हैं—

कालं क्षेत्रं मात्रां स्वात्म्यं
द्रव्य-गुरु-लाघवैः स्वबलम् ।
ज्ञात्वा योभ्यवहार्य
भुक्ते किं भेषजैस्तस्य ।।

जो व्यक्ति-

१. **काल** : सर्दी, गर्मी, बरसात, तथा प्रातः, दोपहर, संध्या का विचार करके ।

२. **क्षेत्र** : (जिस क्षेत्र में वह निवास कर रहा है, उसकी जलवायु)

३. **मात्रा** : (भोजन का परिमाण तथा शरीर की आवश्यकता)

४. **स्वभाव** : (अपने शरीर का स्वभाव)– प्रकृति –पित्त प्रकृति है, वात प्रकृति है अथवा कफ प्रकृति है–ब्लडप्रेशर लो है या हाई आदि)

५. **द्रव्य** : (भोज्य पदार्थ के गुण-अवगुण तथा सुपाच्यता-दुष्पाच्यता, उदर के लिए भारी है या हल्का)

६. **स्वशक्ति** : (पाचन सामर्थ्य–कि मैं इस भोजन को हजम कर भी सकूँगा या नहीं, कहीं शरीर में, मन में विकार तो नहीं हो जायेंगे)

इन बातों का ध्यान रखकर जो व्यक्ति भोजन करता है, उसे औषधि की

आवश्यकता नहीं पड़ती, वह सदा नीरोग रहता है ।

इस प्रकार आहार एवं आरोग्य विषय पर चिन्तन करने से यह स्पष्ट होता है कि-

- शाकाहार ही मानव का प्राकृतिक भोजन है ।
- शाकाहार में भी सात्विकता, शुद्धि और समयानुकूलता का विवेक रखना जरूरी है ।
- आहार के साथ ही उपवास, एकाशन, ऊनोदरी, रात्रिभोजनपरिहार ये ऐसी व्यवस्थाएँ हैं जो धार्मिक दृष्टि से तो उत्तम हैं ही, आरोग्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं ।
- आहार शुद्धि के साथ विचार शुद्धि, व्यवहार शुद्धि—ये तीनों बातें मिलकर—आरोग्य की रक्षा करते हैं और शान्तिपूर्ण दीर्घ जीवन की गारन्टी भी देते हैं ।

■ ■

उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनि

जैन तत्वविद्या के प्रज्ञापुरुष सिद्धहस्त लेखक

जन्म : वि. सं. १९८८, धनतेरस, ७ नवम्बर, १९३१

दीक्षा : ईस्वी सन् १ मार्च १९४१

उपाचार्य पद : १२ मई, १९८७, पूना श्रमण सम्मेलन

श्रद्धा का दीपक निराशा और कुण्ठा के सघन अंधकार को मिटाकर हृदय में आशा और विश्वास ा प्रकाश फैला देता है ।

समर्पण की भावना–मनुष्य को बड़े से बड़ा याग करने की शक्ति देती है ।

भगवान और गुरु के प्रति जबतक श्रद्धा और मर्पण का भाव नहीं जगेगा, तब तक न तो साधना ें प्रकाश प्राप्त होगा, और नहीं शक्ति !

अपने साध्य को प्राप्त करने के लिए श्रद्धा और समर्पण का आलम्बन लीजिए, सफलता अवश्य मिलेगी ।

—उपाचार्य देवेन्द्रमुनि

काशक: श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर